

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

शशांक कुमार लाल

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

2015 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 9803

17 अगस्त, 2023

(माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहित कुमार शाह)

विचार के लिए मुद्दा

क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई विभागीय जांच बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 2005 के अनुपालन में नहीं होने के कारण प्रक्रियात्मक रूप से दोषपूर्ण थी?

हेडनोट्स

वर्तमान मामले में, विभागीय जांच के दौरान प्रस्तुतिकर्ता पदाधिकारी की अनुपस्थिति रही और जांच पदाधिकारी ने स्वयं ही प्रस्तुतिकर्ता पदाधिकारी की भूमिका निभाई, जो कि नियम 17(5)(c) और 17(6) का स्पष्ट उल्लंघन है, जिससे पूरी जांच प्रक्रिया दोषपूर्ण हो गई। (पैरा - 12)

पूरी जांच रिपोर्ट किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, न तो कोई गवाह प्रस्तुत हुआ और न ही अभियोजन द्वारा लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने हेतु कोई दस्तावेज प्रमाणित किया गया। (पैरा - 13)

दंडादेश आदेश किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, क्योंकि यह केवल औपचारिक जांच रिपोर्ट पर आधारित है। (पैरा - 18)

याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा - 22)

न्याय दृष्टान्त

रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एस.सी.सी. 570; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एस.सी.सी. 772; भारत संघ बनाम राम लखन शर्मा, (2018) 7 एस.सी.सी. 670; शंकर दयाल बनाम बिहार राज्य, सिविल रिट नं. 7207/2016; पंचानन कुमार बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड, 1996 (1) पी.एल.जे.आर. 401; कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त, 1999 (2) एस.सी.सी. 10; दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय, (2013) 10 एस.सी.सी. 324

अधिनियमों की सूची

बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 2005

मुख्य शब्दों की सूची

विभागीय जांच; प्राकृतिक न्याय; प्रस्तुतिकर्ता पदाधिकारी; नियम 17(6); प्रक्रियात्मक त्रुटि; पुनर्नियुक्ति; बकाया वेतन; साक्ष्य का अभाव; सेवा से बर्खास्तगी का निरस्तीकरण; निगरानी मामला

प्रकरण से उत्पन्न

10.10.2014 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्तगी और 09.06.2015 को पुनर्विचार याचिका के खारिज होने के विरुद्ध।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता की ओर से: श्री अशिष गिरी, अधिवक्ता; श्री सुमित कुमार झा, अधिवक्ता; सुश्री रिया गिरी, अधिवक्ता; श्री बिबुतोष कुमार, अधिवक्ता
राज्य की ओर से: श्री अनिर्बन कुंझ, एस.सी-24

रिपोर्टर जिनके द्वारा हेडनोट बनाया गया: श्री अमित कुमार मल्लिक, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार मे
2015 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 9803

=====

शशांक कुमार लाल, पिता- स्वर्गीय डॉ. हीरालाल पाल, वर्तमान निवासी- सेक्टर-4, एच, प्लॉट सं.25, बहादुरपुर हाउसिंग कॉलोनी, पटना-800026 ।

... ..याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. प्रधान सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार, पटना के माध्यम से बिहार राज्य।
2. प्रधान सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार, पटना।
3. अपर सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार, पटना।
4. आयुक्त, तिरहुत प्रमण्डल, मुजफ्फरपुर।
5. जिला दंडाधिकारी, बेगुसराय।
6. स्थापना उप-समाहर्ता, बेगुसराय।
7. अनुमंडल पदाधिकारी, बलिया, बेगुसराय।

... ..उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति:

याचिकाकर्ता/ओं के लिए : श्री आशीष गिरि, अधिवक्ता
श्री सुमित कुमार झा, अधिवक्ता
सुश्री रिया गिरि, अधिवक्ता
श्री बिबुतोश कुमार, अधिवक्ता:
राज्य के लिए : श्री अनिर्बन कुंदु, एस.सी.-24

=====

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहित कुमार शाह

मौखिक निर्णय

दिनांक: 17-08-2023

1. वर्तमान रिट याचिका अपर सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार, पटना, अर्थात् प्रतिवादी सं.3 द्वारा पारित दिनांक 10.10.2014 के दंड आदेश को

दरकिनार करने के लिए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी सं.3 द्वारा पारित दिनांक 09.06.2015 के आदेश को दरकिनार करने की भी प्रार्थना की है, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दायर समीक्षा याचिका को खारिज कर दिया गया था।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता, सरकारी सेवा में नियुक्त होने के बाद, सभी संबंधितों की संतुष्टि के अनुसार काम कर रहा था, हालाँकि, जब वह बेगूसराय के अंचल अधिकारी के रूप में तैनात था और उसने साहेबपुर कमाल थाना कांड संख्या 21/2007, दिनांक 11.02.2007 के तहत उन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ एक प्राथमिकी दर्ज कराई थी, जो बेगूसराय में श्री महेश प्रसाद यादव की ज़मीन पर चारदीवारी के निर्माण में कानून-व्यवस्था की समस्या पैदा कर रहे थे, तब निगरानी विभाग को याचिकाकर्ता के खिलाफ एक शिकायत प्राप्त हुई थी, जिसमें उसने उपरोक्त पुलिस मामले के आरोपी व्यक्तियों से अवैध रूप से 50,000/- रुपये की रिश्वत मांगी थी, जिसके बाद निगरानी विभाग ने जाल बिछाया था और याचिकाकर्ता को सुभाष यादव नामक व्यक्ति से 22.02.2007 को 8000/- रुपये की रिश्वत लेते हुए पकड़ा था। जिसके परिणामस्वरूप सतर्कता प्रकरण संख्या 24/2007, दिनांक 23.02.2007 को दर्ज किया गया। इसके बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप तय किए और याचिकाकर्ता को दिनांक 19.09.2007 का प्रपत्र (का) भेजा गया, जिसमें निम्नलिखित आरोप लगाए गए:-

“(i) याचिकाकर्ता का अपने कर्तव्यों के निर्वहन के लिए 50,000/- रुपये की मांग करना एक बुरा आचरण है।

(ii) शिकायतकर्ता सुभाष यादव द्वारा नियमानुसार कार्यालय में 10,000/- रुपये और 3,020/- रुपये जमा करने के बावजूद, याचिकाकर्ता द्वारा उनसे की गई 50,000/- रुपये की मांग अवैध है।

(iii) जब शिकायतकर्ता याचिकाकर्ता को 10,000/- रुपये देने के लिए सहमत हुआ था, जिसमें से 2,000/- रुपये का भुगतान

किया गया था और उसने शेष 8,000/- रुपये देने का वादा किया था, केवल तभी याचिकाकर्ता ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए सहमति व्यक्त की थी और पुलिस बल के साथ मौके पर जाने के लिए सहमत हुआ था।”

3. इसके बाद याचिकाकर्ता ने 22.01.2008 को उपरोक्त आरोप पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत किया और फिर तिरहुत प्रमंडल, मुजफ्फरपुर के आयुक्त द्वारा जाँच की गई, हालाँकि विभागीय कार्यवाही के दौरान किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई और अंततः तिरहुत प्रमंडल, मुजफ्फरपुर के आयुक्त ने 14.12.2013 को जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया है कि चूँकि वर्तमान विभागीय जाँच याचिकाकर्ता के विरुद्ध सतर्कता मामला दर्ज होने के कारण शुरू की गई है, जो रिश्तत लेते हुए रंगे हाथों पकड़े जाने से संबंधित है, इसलिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी तीन आरोप सिद्ध पाए गए हैं। इसके बाद, संयुक्त सचिव, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार, पटना ने दिनांक 02.04.2014 को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिस पर याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.04.2014 को एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया कि न तो उन्हें वे दस्तावेज़ उपलब्ध कराए गए हैं जिनकी उन्होंने माँग की थी, न ही उन्हें किसी गवाह से पूछताछ करने की अनुमति दी गई है और न ही विभाग द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ की गई है, और न ही उन्हें विभाग के गवाहों से जिरह करने का कोई अवसर दिया गया है। इसके बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी अर्थात् प्रतिवादी संख्या 3 ने दिनांक 10.10.2014 को दंड का आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को केवल इस आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिया गया कि पुलिस द्वारा विचाराधीन सतर्कता प्रकरण संख्या 124/2007 में विद्वान निचली अदालत में आरोप पत्र पहले ही दाखिल किया जा चुका है। ऐसा कहा गया है

कि याचिकाकर्ता ने एक पुनरीक्षण याचिका दायर की थी, हालाँकि, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दिनांक 09.06.2015 को पारित आदेश द्वारा उसे भी खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि संपूर्ण विभागीय कार्यवाही कई प्रक्रियात्मक खामियों से ग्रस्त है, जिनमें से पहली खामी बिहार सरकार सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 2005 (जिसे आगे 'नियमावली, 2005' कहा जाएगा) के नियम 17(6) का अनुपालन न करना है।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि नियमावली, 2005 के नियम 17 और 18, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपनाई जाने वाली एक अनिवार्य प्रक्रिया निर्धारित करते हैं, जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप ज्ञापन की तामील के चरण से शुरू होती है, जिससे अपराधी को उस पर प्रतिक्रिया देने का अधिकार मिलता है। इससे अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर भी यह सुनिश्चित करने का समान दायित्व आ जाता है कि क्या आरोपों पर आगे कार्रवाई की जानी आवश्यक है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के संतुष्ट होने के बाद ही, साथ ही नियम 17(3) के तहत नियम 17(4) के साथ अनिवार्य प्रक्रिया पूरी होने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी या तो स्वयं मामले की जांच कर सकता है या नियम 17(6) के तहत एक जांच अधिकारी नियुक्त कर सकता है और उसके बाद ही जांच अधिकारी कार्यवाही अपने हाथ में लेता है। नियमावली, 2005 के नियम 17(5)(सी) और 17(6) के तहत, अनुशासनात्मक प्राधिकारी का एक और दायित्व है, अर्थात्, विभाग के मामले की अगुवाई के लिए एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति करना, जिसे वर्तमान मामले में मंजूरी दे दी गई है।

6. अभिलेखों से स्पष्ट है कि विभागीय कार्यवाही निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत आयोजित की गई है क्योंकि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप पर सुनवाई नहीं की गई है, जैसा कि रिट याचिका के साथ अनुलग्नक-4 के रूप में संलग्न आरोप ज्ञापन की प्रति से स्पष्ट है। इस संबंध में कानूनी स्थिति अब एकीकृत नहीं है, क्योंकि

इसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.06.2017 को 2016 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 7207 (शंकर दयाल बनाम बिहार राज्य एवं अन्य) में पारित निर्णय द्वारा सुलझा लिया गया है। जिसका प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“नियमावली का नियम 17(3)” अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर यह दायित्व डालता है कि वह किसी दोषी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप पत्र तैयार करे या दोषी अधिकारी के विरुद्ध आरोप पत्र तैयार करवाए। उप-नियम (4) आगे यह आदेश देता है कि इस प्रकार तैयार किए गए आरोप पत्र को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के माध्यम से या विधिवत अधिकृत अधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर लगाया गया दायित्व यहीं समाप्त नहीं होता, बल्कि उसे अभी स्वयं को संतुष्ट करना है कि प्रस्तावित आरोप पर दोषी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के लिए जाँच अधिकारी द्वारा जाँच की आवश्यकता है या समापन की आवश्यकता है। नियम 17(4) के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी को विशेष रूप से प्रदान की गई यह शक्ति प्रत्यायोजित नहीं की जा सकती। वर्तमान मामले में अनुशासनात्मक प्राधिकारी पर लगाए गए इस अनिवार्य दायित्व का उल्लंघन किया गया है, जैसा कि जाँच अधिकारी द्वारा जारी दिनांक 1.2.2008 (अनुलग्नक 2) के पत्र से पुष्टि होती है, जिसमें याचिकाकर्ता को अपने समक्ष लगाए गए आरोपों पर अपना जवाब दाखिल करने का निर्देश दिया गया था। यह एक घोर वैधानिक उल्लंघन है और इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 1996(2) पी.आई.जे.आर.95 (रवींद्र नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य सड़क परिवहन निगम) में दिए गए अपने फैसले में इस पर टिप्पणी की है, जब खंडपीठ ने फैसले के कंडिका 6 में निम्नलिखित राय व्यक्त की है:

“6.... ... जाँच अधिकारी आरोपों के जवाब पर विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी को आरोपों के जवाब पर विचार करना है और जवाब में दिए गए कारणों पर विचार करने के बाद यह तय करना है कि आरोपों की आंतरिक जाँच करके कार्यवाही को बंद किया जाए या जारी रखा जाए।”

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि जाँच अधिकारी द्वारा प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को जाँच कार्यवाही के दौरान उपस्थित रहने के लिए कई बार अनुरोध किए जाने के बावजूद, वह उपस्थित नहीं हुए, इसलिए प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति, जैसा कि 2005 के नियमावली, नियम 17(5) (सी) और 17(6) में अनिवार्य है, एक गंभीर प्रक्रियात्मक कमी है, जिसने पूरी विभागीय जाँच को अवैध बना दिया है। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा** मामले में दिए गए निर्णयों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो (2010) 2 एस.सी.सी. 772 में रिपोर्ट किया गया था और **भारत संघ बनाम राम लखन शर्मा** मामले में दिए गए निर्णयों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो (2018) 7 एस.सी.सी. 670 में रिपोर्ट किया गया था। यह सच है कि इस मामले में, जांच अधिकारी ने स्वयं प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाई है, जिसके परिणामस्वरूप पूरी जांच ही दोषपूर्ण हो गई है। 1996 में दिए गए एक निर्णय (1) पी.एल.जे.आर. 401 (**पंचानन कुमार बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड**) का भी संदर्भ लिया जाना चाहिए जिसका कंडिका संख्या 11 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“11. पक्षों के प्रतिद्वंदी तर्कों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का मत है कि इस मामले में जाँच दोषपूर्ण है क्योंकि जाँच अधिकारी ने स्वयं प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य किया है, जबकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति विद्युत बोर्ड द्वारा की गई थी। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी विभाग का मामला प्रस्तुत करने के लिए जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित क्यों नहीं हुए। इस मामले के विशिष्ट तथ्यों में, जाँच अधिकारी द्वारा विभाग की ओर से स्वयं मामला प्रस्तुत करने और उक्त मामले की सत्यता या असत्यता की जाँच करने का दायित्व स्वयं अपने ऊपर लेने की कार्रवाई स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि जाँच अधिकारी, इस मामले में, एक न्यायोचित और निष्पक्ष जाँच अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा है। उसने प्रस्तुतकर्ता और

जाँच अधिकारी दोनों की भूमिकाएँ अपने भीतर समेट ली हैं और इस प्रकार उसने ऐसे तरीके से कार्य किया है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसके बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णय के कंडिका सं.28 का उल्लेख किया है, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत एक जाँच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जाँच करना है, यहाँ तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूँकि किसी मौखिक साक्ष्य की जाँच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज सिद्ध नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं, उन पर विचार नहीं किया जा सकता था।”

9. इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि चूँकि जाँच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका स्वयं संभाल ली है, इसलिए पूरी जाँच कार्यवाही दूषित हो गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट के मूल अवलोकन से पता चलता है कि न तो किसी गवाह से पूछताछ की गई है और न ही कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है और चूँकि याचिकाकर्ता के खिलाफ सतर्कता मामला दर्ज किया गया है, इसलिए जाँच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आरोप सिद्ध हो गए हैं। इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि जाँच अधिकारी के निष्कर्ष स्पष्टतः किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं।

इस संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जो (2009) 2 एस.सी.सी. 570 में रिपोर्ट किया गया है, जिसके कंडिका संख्या 14 से 16, 21 और 23 नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:-

“14. निस्संदेह, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जाँच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री पर विचार करते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। जाँच अधिकारी द्वारा जाँच के दौरान सभी अभियुक्तों के विरुद्ध एकत्रित किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता था। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी विषय-वस्तु को साबित नहीं किया। जाँच अधिकारी ने अन्य बातों के अलावा, प्राथमिकी पर भी भरोसा किया, जिसे साक्ष्य नहीं माना जा सकता था।

15. हमने पहले ही देखा है कि जाँच अधिकारी द्वारा जिस एकमात्र मूल साक्ष्य पर भरोसा किया गया है, वह अपीलकर्ता द्वारा पुलिस के समक्ष किया गया कथित स्वीकारोक्ति था। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति साबित होनी चाहिए थी। कुछ सबूत रिकॉर्ड में पेश किए जाने चाहिए थे जो यह दर्शाते हों कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने में शामिल था। बेशक, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं था। यहाँ तक कि कोई अप्रत्यक्ष प्रमाण भी नहीं था। रिपोर्ट का सार यह दर्शाता है कि जाँच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था क्योंकि अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।

16. भारत संघ बनाम एच. सी. गोयल 4 में यह निर्णय दिया गया था: (ए.आइ.आर. पृष्ठ 369-70, कंडिका 22-23)

"22.... दोनों कमियाँ अलग-अलग और विशिष्ट हैं, हालाँकि, संभवतः, कुछ मामलों में दोनों मौजूद हो सकती हैं। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ कोई सबूत नहीं है, यहाँ तक कि जहाँ सरकार सद्भावना से कार्य कर रही है; उक्त कमियाँ वहाँ भी मौजूद हो सकती हैं जहाँ सरकार दुर्भावना से कार्य कर रही है और उस स्थिति में, सरकार का निष्कर्ष, जो किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं है, दुर्भावना का परिणाम हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अगर यह साबित हो जाता है कि सरकार के निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है, तो बिना किसी और सबूत के उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की जाएगी। इसीलिए हम विद्वान महान्यायवादी के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि चूँकि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए प्रतिवादी के पक्ष में कोई उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की जा सकती।

23. यह हमें प्रत्यर्थी के इस तर्क के गुण-दोष पर ले जाता है कि अपीलार्थी का यह निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी के खिलाफ बनाया गया तीसरा आरोप साबित हो गया था, किसी भी सबूत पर आधारित नहीं है। इससे हम प्रतिवादी के इस तर्क के गुण-दोष पर पहुँचते हैं कि अपीलकर्ता का यह निष्कर्ष कि प्रतिवादी के विरुद्ध लगाया गया तीसरा आरोप सिद्ध हो गया है, किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। विद्वान महान्यायवादी ने हमारे समक्ष इस बात पर जोर दिया है कि इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि अपीलकर्ता भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने के दृढ़ संकल्प के साथ कार्य कर रहा है, और इसलिए, यदि यह दर्शाया जाता है कि अपीलकर्ता द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक उचित रूप से संभावित दृष्टिकोण है, तो इस न्यायालय को उस निर्णय के अपील में नहीं बैठना चाहिए और यह तय करना चाहिए कि क्या यह न्यायालय भी यही दृष्टिकोण अपनाता या नहीं। यह तर्क निस्संदेह पूर्णतः सही है। प्रतिवादी के मामले के इस भाग पर विचार करते समय हम वैध रूप से केवल यही परीक्षण लागू कर सकते

हैं कि क्या कोई ऐसा साक्ष्य है जिसके आधार पर प्रतिवादी के विरुद्ध यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उसके विरुद्ध आरोप 3 सिद्ध हो गया था? ऐसी दलील पर अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय किसी विशेष निष्कर्ष के समर्थन में साक्ष्य की पर्याप्तता के प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता। यह एक ऐसा मामला है जो उस प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र में आता है जो इस प्रश्न से संबंधित है; लेकिन उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है और उसे यह जांच करनी ही चाहिए कि क्या आक्षेपित निष्कर्ष के समर्थन में कोई साक्ष्य मौजूद है। दूसरे शब्दों में, यदि जांच में प्रस्तुत सभी साक्ष्यों को सत्य मान लिया जाता है, तो क्या यह निष्कर्ष इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रश्नगत आरोप प्रतिवादी के विरुद्ध सिद्ध हो गया है? यह दृष्टिकोण साक्ष्यों का मूल्यांकन करने से बचेगा। यह साक्ष्य को उसके वास्तविक रूप में लेगा और केवल यह जाँच करेगा कि क्या उस साक्ष्य के आधार पर कानूनी रूप से आक्षेपित निष्कर्ष निकलता है या नहीं। इस परीक्षण को लागू करते हुए, हम यह मानने के लिए इच्छुक हैं कि प्रतिवादी की शिकायत पुष्ट है, क्योंकि, हमारी राय में, अपीलकर्ता द्वारा प्रतिवादी को खारिज करने के आदेश में निहित यह निष्कर्ष कि उसके विरुद्ध आरोप 3 सिद्ध होता है, किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।"

21. एम.वी. बिजलानी बनाम भारत संघ 16 मामले में भी इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 95, कंडिका 25)

"25..... हालाँकि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक मुकदमे की तरह साबित करना ज़रूरी नहीं है, यानी सभी उचित संदेहों से परे, हम इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करते हैं, जिन्हें दस्तावेजों के विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री के आधार पर आरोपों को साबित करने की संभावना प्रबल थी। ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकते। वह प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने से इनकार नहीं

कर सकते। वह साबित करने का भार किसी और पर नहीं डाल सकते। वह केवल अनुमानों और अटकलों के आधार पर गवाहों की प्रासंगिक गवाही को खारिज नहीं कर सकते। वह उन आरोपों की जाँच नहीं कर सकते जिनके लिए दोषी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाए गए थे।”

23. इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश किसी भी तर्क से समर्थित नहीं हैं। चूँकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर दीवानी परिणाम हैं, उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जाँच अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो इसका कोई कारण नहीं था कि आपराधिक अदालत द्वारा स्वयं के साक्ष्य के आधार पर पारित आरोपमुक्त करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करते हुए अभिलेख पर लाई गई सामग्री को साबित करने की आवश्यकता है। किसी ऐसे साक्ष्य के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हो। विभागीय कार्यवाही में साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं हो सकते, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूँकि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट केवल प्रत्यक्षदर्शी और अनुमानों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जाँच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे। जैसा कि सर्वविदित है, संदेह, चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी प्रमाण का विकल्प नहीं माना जा सकता।

11. इसके विपरीत, प्रतिवादी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि विभागीय कार्यवाही के संचालन में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई कमी नहीं है। फिर भी, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य से इनकार नहीं कर पाए हैं कि विभागीय जाँच के दौरान, याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए न तो कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया और न ही किसी गवाह से पूछताछ की गई।

12. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है। यह न्यायालय पाता है कि सबसे पहले, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी पूरे समय अनुपस्थित रहे, जैसा कि 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट से स्पष्ट है और इसके बजाय जाँच अधिकारी ने स्वयं प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाई, जो नियमावली, 2005 के नियम 17(5)(सी) और 17(6) का पूर्ण उल्लंघन है, जिसके परिणामस्वरूप पूरी जाँच दोषपूर्ण हो गई। मामले का यह पहलू माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सरोज कुमार सिन्हा** (उपरोक्त) और **राम लखन शर्मा** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णयों और इस न्यायालय द्वारा **पंचानन कुमार** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णयों द्वारा स्पष्ट रूप से शामिल किया गया है।

13. इस न्यायालय ने अभिलेखों से यह भी पाया है कि विभागीय कार्यवाही के दौरान एक भी गवाह गवाही देने के लिए आगे नहीं आया है और वास्तव में जाँच अधिकारी ने स्वयं दिनांक 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट में कहा है कि चूँकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक सतर्कता मामला लंबित है, इसलिए आरोपों को साबित करने के लिए यह पर्याप्त है, जो मामले के किसी भी दृष्टिकोण से याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई पूरी विभागीय कार्यवाही को दूषित करता है। इस न्यायालय ने यह भी पाया कि विभागीय जाँच के दौरान कोई भी दस्तावेज प्रदर्शित नहीं किया गया, जिससे जाँच अधिकारी अपने निष्कर्षों को किसी साक्ष्य के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँच सके कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप संदेह से परे साबित हो गए हैं। इस प्रकार, दिनांक 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट के मूल अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि जाँच अधिकारी के संपूर्ण निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं, क्योंकि विभागीय जाँच के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए न तो कोई गवाह उपस्थित हुआ और न ही कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत/प्रदर्शित/सिद्ध किया गया जिससे अभियोजन पक्ष द्वारा यहाँ याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को निर्णायक रूप से साबित किया जा सके।

14. मामले के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय यह पाता है कि वर्तमान मामला बिना किसी साक्ष्य का मामला है, इसलिए प्रतिवादी याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने में पूरी तरह विफल रहे हैं। मामले का उक्त पहलू माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **रूप सिंह नेगी** (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय द्वारा पूरी तरह से शामिल किया गया है।

15. रूप सिंह नेगी (उपरोक्त) के उपरोक्त मामले में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास उपलब्ध एकमात्र साक्ष्य अपराधी का इकबालिया बयान और प्राथमिकी थी। उक्त मामले में दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई, बल्कि प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आरोप को बरकरार रखने के लिए इस अभ्यास को अपर्याप्त माना और यह भी माना कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोप, जो प्रमुख साक्ष्यों द्वारा सिद्ध नहीं हुए हैं, अपने आप में साक्ष्य नहीं माने जा सकते। इस प्रकार, रूप सिंह नेगी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामले को पूरी तरह से शामिल करता है।

16. इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक निर्णय का भी संदर्भ लिया जाना चाहिए, जो 1999 2 एस.सी.सी. 10 (कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य) के कंडिका सं.4 से 10, 32, 42 और 43 में प्रतिवेदित किया गया है, जिसका विवरण नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

“4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को बरकरार नहीं रखा जा सकता क्योंकि जांच स्वयं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करती है। यह भी तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य मौजूद नहीं था और इसलिए, निष्कर्ष विकारग्रस्त हैं, खासकर इसलिए कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति रिकॉर्ड में पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर इन निष्कर्षों पर नहीं पहुँच सकता था।

5. दूसरी ओर, भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जाँच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप की गई थी और जाँच के दौरान अपीलकर्ता को अपना बचाव करने का पूरा अवसर दिया गया था। जहाँ तक साक्ष्य का प्रश्न है, यह तर्क दिया जाता है कि यद्यपि यह सत्य है कि किसी भी शिकायतकर्ता से पूछताछ नहीं की गई, परंतु दिल्ली पुलिस (एफ. एवं ए.) नियम, 1980 के नियम 16(3) के कारण, शिकायतकर्ता को व्यक्तिगत रूप से पेश करना आवश्यक नहीं था क्योंकि नियम में ही यह प्रावधान था कि किसी गवाह की अनुपस्थिति में, जिसकी उपस्थिति बिना किसी अनावश्यक देरी, असुविधा या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती, उसका बयान, जो पहले ही किसी अवसर पर दिया जा चुका है, विभागीय जाँच में दर्ज किया जा सकता है और मामले का निर्णय उसी आधार पर किया जा सकता है। इसी नियम के तहत, शिकायतकर्ताओं का पिछला संयुक्त बयान बिना किसी की जाँच किए दर्ज किया गया था। प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में न्यायिक समीक्षा का दायरा अत्यंत संकीर्ण और सीमित है। यह तर्क दिया गया है कि न्यायालय साक्ष्य की पुनर्परीक्षा या पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता और न ही उस साक्ष्य पर जाँच अधिकारी या अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के स्थान पर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकता है।

6. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत या यह न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी या जाँच अधिकारी द्वारा विभागीय जाँच में दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

न्यायालय उन निष्कर्षों पर अपील में नहीं बैठ सकता है और अपीलीय प्राधिकरण की भूमिका ग्रहण नहीं कर सकता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी भी परिस्थिति में न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय और इस न्यायालय को संविधान के तहत उपलब्ध न्यायिक समीक्षा की शक्ति आंतरिक जाँच को भी अपने दायरे में लेती है और यदि निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए कोई साक्ष्य

नहीं है या दर्ज किए गए निष्कर्ष ऐसे हैं जिन तक कोई सामान्य विवेकशील व्यक्ति नहीं पहुँच सकता या निष्कर्ष विकारग्रस्त हैं या उच्च अधिकारी के आदेश पर निकाले गए हैं, तो यह उनमें निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है।

7. नंद किशोर बनाम बिहार राज्य, 1978(3) एस.सी.सी. 366 में, यह माना गया कि आंतरिक न्यायाधिकरण के समक्ष अनुशासनात्मक कार्यवाही अर्ध-न्यायिक प्रकृति की होती है और इसलिए, यह आवश्यक है कि न्यायाधिकरण कुछ साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचे, अर्थात्, ऐसा साक्ष्य जो, और वह भी, कुछ हद तक निश्चितता के साथ, अपराधी के दोष की ओर इशारा करता हो और मामले को संदिग्ध स्थिति में न छोड़े क्योंकि केवल संदेह आंतरिक पूछताछ में भी सबूत का स्थान नहीं ले सकता। इसलिए, यदि अपराधी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है, तो उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष भी विकारग्रस्त होंगे।

8. आंतरिक जांच में दर्ज निष्कर्षों को विकारग्रस्त माना जा सकता है यदि यह दर्शाया गया हो कि ऐसा निष्कर्ष अभिलेख पर मौजूद किसी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर आधारित नहीं है या कोई भी तर्कशील व्यक्ति साक्ष्य के आधार पर उन निष्कर्षों पर नहीं पहुँच सकता। यह सिद्धांत इस न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश राज्य बनाम श्री रामा राव, एआईआर 1963 एससी 1723 में प्रतिपादित किया गया था, जिसमें प्रश्न यह था कि क्या उच्च न्यायालय, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत, विभागीय जांच में दर्ज निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है। यह निर्णय सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम प्रकाश चंद जैन, एआईआर 1969 एससी 983 और भारत आयरन वर्क्स बनाम भागुभाई बालुभाई पटेल एवं अन्य, 1976(1) एस.सी.सी. 518 में अपनाया गया था। राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन सचिव के माध्यम से (श्रम) एवं अन्य, 1984(4) एस.सी.सी. 635 में, यह निर्धारित किया गया था कि जहाँ कदाचार के निष्कर्ष किसी कानूनी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं और निष्कर्ष ऐसा है जिस पर कोई

भी तर्कशील व्यक्ति नहीं पहुँच सकता, निष्कर्षों को विकारग्रस्त मानकर खारिज किया जा सकता है। यह भी निर्धारित किया गया कि जहाँ कोई अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण बिना किसी कानूनी साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करता है और निष्कर्ष केवल उसके द्वारा दिए गए हैं या अनुमानों पर आधारित हैं, वहाँ जाँच-पड़ताल, विवेक का प्रयोग न करने की अतिरिक्त कमी से ग्रसित हो जाता है और वह भ्रष्ट हो जाता है।

9. सामान्यतः उच्च न्यायालय और यह न्यायालय आंतरिक जाँच में दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे लेकिन यदि "दोष" का निष्कर्ष बिना किसी साक्ष्य के आधार पर है, तो यह एक विकारग्रस्त निष्कर्ष होगा और न्यायिक जाँच के अधीन होगा।

10. इसलिए, उन निर्णयों के बीच एक व्यापक अंतर बनाए रखना होगा जो विकारग्रस्त हैं और जो नहीं हैं। यदि कोई निर्णय बिना किसी साक्ष्य के या ऐसे साक्ष्य के आधार पर लिया जाता है जो पूरी तरह से अविश्वसनीय है और कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस पर कार्रवाई नहीं करेगा, तो आदेश विकारग्रस्त होगा। लेकिन यदि अभिलेख में कोई ऐसा साक्ष्य है जो स्वीकार्य है और जिस पर भरोसा किया जा सकता है, चाहे वह कितना भी संक्षिप्त क्यों न हो, तो निष्कर्षों को विकारग्रस्त नहीं माना जाएगा और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

32. उपरोक्त के अलावा, नियम 16(3) पर संविधान के अनुच्छेद 311(2) में निहित प्रावधानों के आलोक में विचार किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या इसका उद्देश्य अपराधी को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करना है। अनुच्छेद 311(2) द्वारा परिकल्पित उचित अवसर का अर्थ है प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार "सुनवाई" जिसके अंतर्गत मूलभूत आवश्यकताओं में से एक यह है कि विभागीय जाँच में सभी गवाहों की जाँच, अपराधी की उपस्थिति में की जाएगी जिसे जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। जहाँ किसी गवाह द्वारा प्रारंभिक पूछताछ या जाँच के दौरान पहले दिए गए किसी बयान को विभागीय कार्यवाही में रिकॉर्ड पर लाने का प्रस्ताव है, वहाँ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून यह है कि उस

बयान की एक प्रति पहले अपराधी को दी जानी चाहिए, जिसके बाद उसे उस गवाह से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

42. जाँच अधिकारी ने निष्पक्ष आंतरिक जाँच करने के लिए खुले मन से विचार नहीं किया जो कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक अनिवार्य घटक है और संविधान के अनुच्छेद 311(2) द्वारा परिकल्पित "उचित अवसर" का भी अनिवार्य घटक है। विभाग के पक्ष में "पक्षपात" ने जाँच अधिकारी की पूरी तर्कशक्ति को इतना बुरी तरह प्रभावित किया कि शिकायतकर्ताओं के पेश न होने का दोष भी अपीलकर्ता पर मढ़ दिया गया जो कि पूरी तरह से विभाग की गलती थी। एक बार जब विभाग को पता चल गया कि ये मजदूर देवली खानपुर में कहीं कार्यरत हैं, तो उनकी उपस्थिति दर्ज कराई जा सकती थी और उन्हें अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित करने के लिए जाँच अधिकारी के सामने पेश किया जा सकता था। उन्होंने इस मामले में इतनी मनमानी की है और अपीलकर्ता को इतने अशिष्ट तरीके से दोषी पाया है कि यह स्पष्ट हो जाता है कि वह केवल किसी वरिष्ठ अधिकारी के आदेश का पालन कर रहे थे, जिसने शायद "उसे फंसाने" का निर्देश दिया था।

43. उपरोक्त कारणों से, अपीलें स्वीकार की जाती हैं। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 28-2-1997 के निर्णय और आदेश को दरकिनार किया जाता है। पुलिस उपायुक्त द्वारा पारित दिनांक 3-5-1991 का आदेश जिसके द्वारा अपीलकर्ता को सेवा से बर्खास्त किया गया था और साथ ही अतिरिक्त पुलिस आयुक्त द्वारा अपील में पारित आदेश को दरकिनार किया जाता है और प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ बहाल करें, जिसमें आज तक के सभी बकाया वेतन भी शामिल हैं, जिनका भुगतान आज से तीन महीने के भीतर किया जाएगा। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

17. अब सजा के आदेश पर आने पर, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक

10.10.2014 के आदेश में, इस न्यायालय का मानना है कि याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त

करने का दंड देने का एकमात्र आधार यह है कि पुलिस द्वारा, लंबित सतर्कता मामले में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध, विद्वत विचारण न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया है, हालाँकि, दिनांक 10.10.2014 का आक्षेपित दंड आदेश न तो किसी साक्ष्य पर आधारित है और न ही उसमें किसी ऐसी सामग्री पर चर्चा की गई है जो विभागीय जाँच के दौरान याचिकाकर्ता के विरुद्ध पाई जा सकती थी, क्योंकि स्पष्ट रूप से कोई सामग्री नहीं है, और इसके अलावा, दिनांक 10.10.2014 के आक्षेपित आदेश में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग न करने और याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दों पर पूरी तरह से विचार न करने की भी बू आती है, इसके अलावा, यह आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, इसलिए यह कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है, इसलिए इसे दरकिनार किया जाना उचित है।

18. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, यह न्यायालय यह पाता है कि न केवल याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई विभागीय जाँच प्रक्रियात्मक अनियमितता और अवैधता से ग्रस्त है, बल्कि दिनांक 10.10.2014 का दंड आदेश भी बिना किसी साक्ष्य के आधारित है, क्योंकि यह एक औपचारिक जाँच रिपोर्ट पर आधारित है, जो भी बिना किसी साक्ष्य के आधारित है, इसलिए जाँच रिपोर्ट और दंड आदेश दोनों ही कानून की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं हैं, इसलिए दिनांक 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट और दिनांक 10.10.2014 का दंड आदेश दरकिनार किया जाता है। परिणामस्वरूप, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका को दिनांक 09.06.2015 को खारिज किया गया था, अब कोई आधार नहीं रखता, इसलिए इसे भी दरकिनार किया जाता है। फिर भी, मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है ताकि जाँच अधिकारी द्वारा जाँच के चरण से नए सिरे से अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सके, जिसे आज से नौ महीने की अवधि के भीतर पूरा करने का निर्देश दिया जाता है।

19. अब, सेवा में पुनर्स्थापना और बकाया वेतन देने के मुद्दे पर आते हुए, यह न्यायालय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दीपाली गुंडू सरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय एवं अन्य, (2013) 10 एस.सी.सी. 324 में रिपोर्ट किए गए मामले में दिए गए निर्णय पर निर्भर करेगा, जिसका कंडिका संख्या 38 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“38. उपरोक्त निर्णयों से जिन प्रस्तावों को निकाला जा सकता है, वे हैं:

38.1. सेवा की गलत समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।

38.2. उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि बकाया वेतन के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/कर्मकार की सेवा अवधि, कर्मचारी/कर्मकार के विरुद्ध सिद्ध किए गए कदाचार की प्रकृति, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी तरह के अन्य कारकों को ध्यान में रख सकते हैं।

38.3. सामान्यतः, किसी कर्मचारी या कर्मकार जिसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे या तो यह दलील देनी होगी या कम से कम न्यायनिर्णायक प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष यह बयान देना होगा कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था या कम वेतन पर नियोजित था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है, तो उसे दलील देनी होगी और यह साबित करने के लिए ठोस सबूत भी पेश करने होंगे कि कर्मचारी/ कर्मकार लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे सेवा समाप्ति से पहले प्राप्त वेतन के बराबर वेतन मिल रहा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्थापित कानून है कि किसी विशेष तथ्य के अस्तित्व को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो उसके अस्तित्व के बारे में सकारात्मक कथन करता है। किसी नकारात्मक तथ्य को साबित करने की तुलना में सकारात्मक तथ्य को साबित करना हमेशा आसान होता है। इसलिए, एक बार जब कर्मचारी

यह साबित कर देता है कि वह नियोजित नहीं था, तो नियोक्ता का दायित्व है कि वह विशेष रूप से दलील दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभप्रद रोजगार में था और उसे समान या काफी हद तक समान वेतन मिल रहा था।

38.4. वे मामले जिनमें श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए के तहत शक्ति का प्रयोग करता है और पाता है कि भले ही कर्मचारी/कर्मकार के खिलाफ की गई जाँच प्राकृतिक न्याय के नियमों और/या प्रमाणित स्थायी आदेशों, यदि कोई हो, के अनुरूप है, लेकिन यह मानता है कि दंड, सिद्ध पाए गए कदाचार के अनुपातहीन था, तो उसे पूरा पिछला वेतन न देने का विवेकाधिकार होगा। हालाँकि, यदि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण यह पाता है कि कर्मचारी या कर्मकार किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है या नियोक्ता ने झूठा आरोप लगाया है, तो उसे पूरा बकाया वेतन देने का पर्याप्त औचित्य होगा।

38.5. जिन मामलों में सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण यह पाता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को प्रताड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय या न्यायाधिकरण को पूर्ण बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश देने का पूरा अधिकार होगा। ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित निर्णय में हस्तक्षेप केवल इसलिए नहीं करना चाहिए कि कर्मचारी/कर्मकार के पूर्ण बकाया वेतन पाने के अधिकार या नियोक्ता के भुगतान के दायित्व पर अलग राय बनने की संभावना है। अदालतों को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि सेवा की गलत/अवैध समाप्ति के मामलों में, दोषी नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी/कर्मकार है और नियोक्ता को उसके गलत कामों के लिए पूरी बकाया मजदूरी के रूप में कर्मचारी/कर्मकार को भुगतान करने के बोझ से मुक्त करके उसे लाभ पहुँचाने का कोई औचित्य नहीं है।

38.6. कई मामलों में, उच्च न्यायालयों ने प्राथमिक न्यायिक प्राधिकरण के पंचाट में इस आधार पर हस्तक्षेप किया है कि मुकदमे को अंतिम रूप देने में बहुत समय लग गया है, इस बात को नज़रअंदाज़ करते हुए कि अधिकांश मामलों में पक्षकार ऐसी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। बुनियादी ढाँचे और मानवशक्ति की कमी मामलों के निपटारे में देरी का मुख्य कारण है। इसके लिए वादियों को दोषी या दंडित नहीं किया जा सकता। यह किसी कर्मचारी या कामगार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे केवल इसलिए बकाया वेतन देने से मना कर दिया जाए क्योंकि उसकी सेवा समाप्ति और पुनर्स्थापना के आदेश के बीच लंबा समय बीत चुका है। अदालतों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से ज्यादातर मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में होता है। वह पीड़ित, यानी कर्मचारी या कामगार की पीड़ा को बढ़ाने के लिए सर्वोत्तम कानूनी विशेषज्ञों की सेवाएँ ले सकता है, जो किसी प्रसिद्ध अधिवक्ता पर पैसा खर्च करने की सुविधा नहीं उठा सकते। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम कर्मचारी मामले में सुझाए गए तरीके को अपनाना विवेकपूर्ण होगा।

38.7. जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड बनाम के.पी. अग्रवाल मामले में की गई यह टिप्पणी कि पुनर्स्थापना पर कर्मचारी/कर्मकार सेवा की निरंतरता का अधिकार के रूप में दावा नहीं कर सकता, तीन न्यायाधीशों की पीठों [हिंदुस्तान टिन वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम कर्मचारी], [सुरेंद्र कुमार वर्मा बनाम केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय] के निर्णयों के अनुपात के विपरीत है, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है और इसे अच्छे कानून के रूप में नहीं माना जा सकता। निर्णय का यह भाग कर्मचारी/कर्मकार की पुनर्स्थापना की अवधारणा के भी विरुद्ध है।”

20. इस न्यायालय का मानना है कि बहाली और परिणामी लाभ प्रदान करने

का मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दीपाली गुंडू सरवासे (उपरोक्त) के मामले में दिए

गए निर्णय, विशेष रूप से, इसके कंडिका संख्या 38.5 द्वारा पूरी तरह से शामिल किया गया है।

21. इस प्रकार, सेवा की गलत समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और पिछला वेतन सहित बहाली सामान्य नियम है। यह भी एक सामान्य कानून है कि नियोक्ता पर यह दायित्व है कि वह विशेष रूप से यह दलील दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभकारी रूप से कार्यरत था, जो कि वर्तमान मामले में प्रतिवादी करने में विफल रहे हैं। विचारणीय एक अन्य कारक यह है कि यदि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को प्रताड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय द्वारा पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान का निर्देश देना पूरी तरह से उचित होगा। मेरा मानना है कि वर्तमान मामला याचिकाकर्ता के साथ प्रतिवादियों द्वारा घोर अन्याय का मामला है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर्याप्त रूप से दर्शाती है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अवहेलना की गई है और याचिकाकर्ता को पीड़ित किया गया है, अतः मेरा मानना है कि दिनांक 14.12.2013 की जाँच रिपोर्ट, दिनांक 10.10.2014 के दंड आदेश और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 09.06.2015 के आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका को खारिज कर दिया गया था, को दरकिनार करने के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता अन्य सभी स्वीकार्य परिणामी लाभों के साथ-साथ पूर्ण बकाया वेतन का हकदार है।

22. रिट याचिका की अनुमति है।

(मोहित कुमार शाह, न्यायमूर्ति)

सौरभ/सोनल

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।